1.गर्भाधान सँस्कार

अब तक सामान्य रुप से हमने सँस्कार के महत्त्व को जाना है । सैद्धान्तिक ज्ञान और प्रायौगिक ज्ञान के आधार पर ही पूर्ण सफलता मिलती है । अभी तक पूर्व के लेखों में जो ज्ञान पाया, वह सैद्धन्तिक है पर अब हम प्रायौगिक ज्ञान की ओर कदम बढ़ायेंगे । जन्म से पूर्व के महत्त्वपूर्ण तीन सँस्कार जो गर्भाधान, पुँसवन और सीमन्तोनयन के नाम से जाने जाते है; क्रमश: उनके बारे में जानेंगे । पहले गर्भाधान को समझें ।

गर्भाधान सँस्कार का महत्त्व- गर्भाधान शब्द ही हमें गर्भ की स्थिति का बोध कराता है । इस सँस्कार को करने हेतु पति-पत्नी की मनोदशा एक सूत्रता में बन्धनी चाहिये । जब दोनों विचार से संतान की ईच्छा करें तो पूर्ण सहमती से प्रसन्नतापूर्वक परस्पर गृहस्थधर्म करने से पूर्व विधिपूर्वक अग्निहोत्र के साथ यह सँस्कार करें । आओ, विधि करने से पहले हम इसके एक-एक पहलु को समझें ।

तिथि-विचार-स्त्री के मासिक-धर्म के ४ दिन सहवास हेतु सर्वथा वर्जित है । शेष के गर्भ-स्थिति के अनुकूल दिन १२ दिन होते हैं । इन १२ दिनों में भी अमावस, पूर्णमासी, एकादशी व त्रयोदशी सूर्य स्थिति के कारण सहवास वर्जित है । इन १२ दिनों के क्रम को भी अच्छी तरह जानना होगा । इनके २रे, ४थे, ६ठे, ८वें, १०वें तथा १२ वें दिन की रात पुत्र हेतु तथा इन १२ दिनों के ३रे, ५वें, ७वें, ९वें तथा ११वें दिन की रात्री कन्या-प्राप्ति हेतु उत्तम है । महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार ये तिथियाँ उतरोतर उत्तम है । अर्थात्पुत्र हेतु सबसे उत्तम १२वाँ दिन और पुत्री के लिये सबसे उत्तम दिन ११वाँ है । इससे यह स्पष्ट हुआ कि बाद के १२ रत्रियों में जो सम तिथि है, वह पुत्र के लिये और जो विषम तिथि है, वह पुत्री के लिये उपयुक्त है । यह ध्यान रहे कि स्त्री के प्रथम ४दिन जो शुद्धि के हैं, उसे शास्त्रीय भाषा में रजस्वला-दिन, मासिक धर्म, ऋतु काल इत्यादि नाम से जाने जाते हैं । इन तिथियों में स्त्री अध्यात्म-चिन्तन किया करे । पूर्व कथित अमावस-पूर्णिमा आदि भी जपोपासानादि की दृष्टि से उत्तम माने गये हैं । इन तिथियों में यज्ञ, जप, तप आदि के द्वारा अध्यात्म विकास का प्रावधान है । इसके लिये इन तिथियों में सूर्य की स्थिति अनुकूल होती है ।

ऐसा करने से मन चाही संतान की प्राप्ति सम्भव है । शास्त्रों में यहाँ तक भी चिन्तन है कि पुत्र-योग में अंन्तिम १२वाँ, १०वाँ आदि दिन-विचार संतान को महात्मा, राजा, विद्वान्, सभ्य, सुसंस्कृत बनने-बनाने में सहायक हैं, ऐसा ही कन्या के लिये जानें कि ११वाँ, ९वाँ, ७वाँ आदि का रात्री-काल उपयुक्त हैं । इससे पता यह चलता है कि ऋतु काल पूर्ण होने पर १२ दिनों में जितना अधिक समय निकल जाये, वह उतना ही अधिक पुष्ट व उत्तम धातु का पोषक है जो पुष्ट गर्भ की स्थापना में सहायक है ।
ऋतुकाल- एक मास में एक वार हर स्त्री का ऋतु काल होता है । इसे ही शुद्धि काल आदि नामों से जानते हैं । जिस स्त्री का ऋतु काल पूर्ण तथा स्वस्थ होता है, वह स्त्री जीवन में अधिक स्वस्थ और दीर्घायु होती है । स्वस्थ शुद्धिकाल का अर्थ है -उचित मात्रा में विकृत रक्त मासिक धर्म काल में बाहर निकलना । इसका पूरा समय लगभग चार दिन का होता है, शुद्धि काल में कम या अधिक होना अस्वस्थ स्त्री का संकेत है ।

ऋतु काल-गणना- जैसा कि हम पूर्व जान चुके हैं कि ऋतुकाल पूर्ण होने के ४दिन बाद के १२दिन ही गर्भाधान के लिये उपयुक्त है तो इसकी अच्छी तरह गणना करना भी हमें पता होना चाहिये । इसमें शास्त्रीय विचार यह है कि अगर मध्य रात्री से पूर्व ऋतु स्राव प्रारम्भ हुआ है तब उस रात्री के पश्चात्प्रात: सूर्योदय काल दूसरा दिन माना जायेगा और अगर मध्य रात्री के बाद मासिक स्राव आया है, तो उस रात्री के

बाद होने वाला प्रात: सूर्योदय पहला दिन ही माना जायेगा । यह उल्लेख इसलिये दिया गया कि पति-पत्नी गर्भ-स्थापना के दिन अपनी चाहत और समझ के अनुसार निर्णय कर वैदिक विधि द्वारा दिन में ही पूर्व यज्ञपूर्वक सँस्कार कर सकें और अपने स्वतन्त्र प्रसन्नचित्त विचार से परस्पर सम्बन्ध बना सकें ।

औषधि-विचार-महर्षि दयानन्द ने अपनी सँस्कार विधि पुस्तक में "सर्वौषधि" का विचार कर उसका विस्तृत वर्णन किया । रामायण काल में भी वन्ध्यापन दूर करने हेतु महाराज दशरथ की तीनों धर्म पत्नियों कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा को विशेष औषधि से युक्त खीर पकाकर दी गयी थी फलत: बलिष्ठ, राजा, विद्वान्, सभ्य और सुसँस्कृत संतानें हुयीं जो राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्ण के नाम से सुप्रसिद्ध हुये । वस्तुत: इसमें विज्ञान यह है कि पुरुष-शुक्राणु अधिक होने पर पुत्र और स्त्री-रजस-शक्ति मजबूत होने पर कन्या का जन्म होता है । बराबर होने पर नपुंसकता बन जाती है । इसके लिये चिकित्सा-प्राणाली भी उपलब्ध है जिससे पुरुष-शुक्राणु को बढ़ाया जा सकता है । हमें संकोच छोड़कर इस सुविधा का लाभ लेना चाहिये न कि कन्या होने पर स्त्री को कोषना/ भला-बुरा कहना चाहिये । वैदिक विधा में तो कुलीन स्त्री सदैव सम्मान की पात्रा है । हमें इसका ध्यान हमेशा ही रखना होगा ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपनी पुस्तक सँस्कार विधि के गर्भाधान प्रक्रिया में निम्नलिखित विशेष पहलुओं पर हमारा विशेष ध्यान आकर्षित किया । १. आयु-विचार २. ऋतु-विचार ३. पुत्र-पुत्री-विचार ४. गर्भाधान-सुकर्म -विचार । हम इन्हें क्रमश: समझने का प्रयत्न करें-

आयु-विचार-गर्भाधान की भी आयु वही होती है जो विवाह की होती है । विवाह के ठीक पश्चात्गर्भाधान की अवस्था आती है । गर्भाधान हेतु तीन महत्त्वपूर्ण बातों को समझना बहुत ही आवश्यक है ।
१. वाल्यावस्था-पुरुष के लिये-१६ वर्ष से पूर्व, कन्या के लिये-१२ वर्ष से पूर्व ।
२. किशोरावस्था-पुरुष के लिये-२५ वर्ष से पूर्व, कन्या के लिये-१८ वर्ष से पूर्व ।
३. युवावस्था- पुरुष के लिये-२५ वर्ष के बाद (वैदिक), किन्तु संवैधानिक(constitutional) २१ वर्ष के बाद ही, कन्या के लिये-१८ वर्ष के बाद (संवैधानिक/constitutional)

वाल्य-जीवन व किशोर-जीवन वैदिक मर्यादा में विवाह के लिये निषेध है । युवा काल ही विवाह के लिये उपयुक्त माना गया है । अत: गर्भाधान हेतु उपयुक्त काल कन्या हेतु १८ के बाद, कम से कम १६ वर्ष अवश्य हो, और पुरुष हेतु २५ के बाद उपयुक्त है, कम से कम २१ वर्ष अवश्य हो । वाल व किशोर विवाह दुर्भाग्यपूर्ण मान्य है । शरीर-वैज्ञानिकों को मानना है कि वाल-जीवन में गर्भाधान होने पर होने वाली संताने निर्बल, वुद्धिहीन, रोगयुक्त तथा अल्पायु होती है । किशोर जीवन के गर्भाधान से संताने शरीर से थोड़ा स्वस्थ सम्भव है, पर मस्तिष्क, ज्ञान-विज्ञान व वुद्धि से पूर्ण विकसित होने में कठिनाई का होना सम्भावित है अर्थात्ज्ञानेन्द्रियों के पूर्ण विकास में कमी का रह जाना सम्भव है । फलत: इस उम्र में गर्भाधानित संताने प्राय: मूर्ख वा अपूर्ण विकसित रह जाती है । युवा कालीन गर्भाधान से उत्पन्न संतानें शरीर, मन, वुद्धि आदि सब रुप से स्वस्थ व विकसित होती हैं । अत: हमें नितान्त ध्यान रखना है कि विवाह युवा काल में ही हो ताकि उनकी आने वाली संतानें भी स्वस्थ, सुन्दर, मानवीय गुणों से ओत-प्रोत हों तथा अपरिपक्वता के शिकार वे न हों । अपरिपक्व अवस्था के कारण संतानें भी अपरिपक्वता का शिकार होकर प्राय: अपंग हो जाती हैं, कई वार तो, यह वंशानुक्रमण बन जाता है । पीढ़ी-गर-पीढ़ी यह परिवार में बिमारी रहने लग जाती है, इसलिये यह बहुत ही आवश्यक है कि समाज में वाल व किशोर विवाह सर्वथा वर्जित हों और केवल युवा-विवाह ही सदा प्रचलित हो ।

ऋतुक्षेत्र-विचार- जैसे शरद, ग्रीष्म और वर्षा ऋतुयें क्रमश: आती हैं और भूमि को बीज और जल के सम्पर्क से उर्वरा(फर्टिलाइज्ड) बना देती हैं, वैसे ही स्त्री का शरीर -भूमि(क्षेत्र) तथा मासिक रक्त-स्राव का समय ऋतु काल है । दूषित रक्त स्राव से शरीर शुद्ध होता है मानो उर्वरा क्षेत्र (firtilised) तैयार हो रहा है । रक्त स्राव के बाद ४ दिन छोड़कर बाकी के १२ दिन स्त्री के लिये ऋतु काल के रुप में गर्भाधान के लिये अत्यन्त उपयुक्त काल होता है । इस का विचार करना ही ऋतु क्षेत्र-विचार है । उपयुक्त काल में गर्भाधान ही मानो बीजाम्बु (शुक्राणु और रजस) का उपयुक्त ऋतुदान है । इस प्रकार ऊपरोक्त तिथियों में विधिवत्गर्भाधान करना उत्तरोत्तर तिथि-चयन उत्तम है ।

विचारणीय है कि गर्भाधान एक संतानोत्पति हेतु श्रेष्ठ विधि है । यों तो जब से कन्या का रजोदर्शन प्रारम्भ होता है, उसके शरीर रुपी क्षेत्र में संतानोत्पति की क्षमता आ जाती है पर जैसे-जैसे वर्णित युवा काल की ओर कन्या बढ़ती है, वैसे-वैसे उसका शरीर रुपी क्षेत्र अधिक सक्षम होता जाता है । प्रथम रजोदर्शन (Peried) शुरु होने के लगभग ४-५ वर्षों बाद ही स्त्री का गर्भ-क्षेत्र गर्भ ग्रहण हेतु परिपक्व हो पाता है । इन्हीं सब वैज्ञानिक कारणों को ध्यान में रखकर महर्षि दयानन्द ने विवाह और विवाह के पश्चात्गर्भाधान हेतु वर और कन्या की न्युनतम आयु २५ वर्ष पुरुष और १६ वर्ष कन्या की निर्धारित की है । संवैधानिक रुप से भी विवाह के लिये पुरुष की न्युन्तम आयु २१ वर्ष और कन्या की १८ वर्ष ही मान्य है ।

पुत्र-पुत्री-विचार- इस के सम्बन्ध में पूर्व के अंकों में भी पर्याप्त लिखा गया है तथापि कुछ परीक्षण और प्रमाणों के आधार पर संक्षेप से इतना जानें-

१. पुरुष शुक्राणु अधिक होने पर लड़का होगा और रज: कण अधिक होने पर संतान कन्या होगी ।
२. पुरुष शरीर से मजबूत हो , बड़ी उम्र का हो और स्त्री कृश काय/पतले शरीर वाली हो तथा संतुलित गर्भाधान हुआ हो, तब भी पुत्र पैदा होगा ।
३. पुरुष और स्त्री द्वारा निर्धारित ऋतुकाल के सम/जोड़े दिनों में गर्भाधान करने पर लड़का और विषम दिनों/ औड्डेज में सहवास बनाने से कन्या की उत्पत्ति की सम्भावना अधिक है ।
४. पुरुष के दायीं ओर के शुक्राणु से पुत्र और बायीं ओर के शुक्राणु से कन्या सम्भावित है ।
५. स्त्री के दायीं डिम्ब (Ovari) से रज: स्राव वाले शुद्धिमास में ऋतुकाल के नियमानुसार गर्भाधान की स्थिति में पुत्र और बायीं डिम्ब (Ovari) से रज: स्राव वाले मास की गर्भ-स्थिति में कन्या की सम्भावना बनती है । विशेष जानकारी के लिये संस्कार चन्द्रिका, लेखक-डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालँकार पढ़ें-साभार

(नोट- स्त्री का मासिक रक्त स्राव एक मास में उसकी दायीं डिम्ब (ovari) से होता है तथा दूसरे मास में क्रमश: वायीं डिम्ब (ovari) से होता है । इससे गर्भाधान तिथि निर्धारण करने में मदद मिल सकती है ।)

गर्भाधान सुकर्म विचार- वैदिक सँस्कृति में गर्भाधान एक धार्मिक सँस्कार है । यह एक सम्मानित कृत्य होने से पूर्णतया मर्यादित है । कुछ लोगों में कुछ ऐसा शर्म सा है कि यह एक घृणित, शर्मनाक कुकृत्य है पर, वैदिक धर्म में विवाहोपरान्त गर्भाधान सँस्कार अत्यन्त मर्यादित, सम्मानित, महत्त्वपूर्ण और विधिपूर्वक करने योग्य कार्य है । इसका कारण है कि इस सँस्कार के आधार पर ही नये शरीर में एक पवित्र आत्मा संतान के रुप में स्थान ग्रहण करती है । तब स्त्री-पुरुष माता-पिता की पदवी प्राप्त कर परिवार, समाज और राष्ट्र में गौरवान्वित होते हैं और सम्बन्धित सम्बन्धियों व मित्रों को नया परिचय देते हुये नयी खुशियाँ प्रदान करते हैं । क्यों नहीं, क्योंकि इसी सँस्कार के मूल में एक अनुपम श्रृष्टि का मूल निहित है । सुख, संतोष,

हर्ष, सम्मान और परिवार, समाज तथा राष्ट्र की प्रतिष्ठा निहित है । अत एव इस सँस्कार को एक निर्माणात्मक कार्य मानकर शिवसंकल्प और विधिपूरवक इसे पूरा करना होगा तभी हम निश्चितरुप से अपनी भावनाओं के अनुरुप बलशाली, वुद्धिमान्, तेजस्वी, और होनहार संतानें प्राप्त कर सकेंगे । आखिरकार, दिव्य विद्युत्तरंगों में विचरण करने वाली दिव्य आत्माओं में से स्त्री-पुरुष शिवसंकल्प व यज्ञ विधा से एक होनहार शुद्ध आत्मा का आह्वाहन करते हैं और प्रभु-कृपा से उसे गर्भ-स्थिति द्वारा संतानरुप में प्राप्त भी कर लेते है । इस कारण ही मातायें विशेष कर दिव्य और होनहार संतानों के लिये सदा गौरवान्वित रही हैं । हमें नितान्त इनका अनुकरण करना चाहिये ।

हमें गर्भाधान काल की मनोदशा के प्रभाव से जुड़े कुछ उदाहरणों का अवलोकन करना भी जरूरी है । यह बात सच है कि गर्भाधान के समय स्त्री के मन में जो स्थिति पैदा होगी, उसका प्रभाव होने वाली संतान पर अवश्य ही पड़ेगा । मदालसा की कहानी प्रसिद्ध है । "शुद्धोऽसि वुद्धोऽसि निरंजनोऽसि" बोलती हुयी मदालसा अपनी पूर्व की आठ संतानों को सँन्यासी बना दिया और जब ईच्छा बदली तो नौवीं संतान को राजा बनाया । महाभारत में महाराज धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर जी के जन्म की कहानी भी इसी तथ्य को सिद्ध करती है । प्रमाण- "तस्य कृष्णस्य कपिलां जटां दीप्ते च लोचने । बभ्रूणि चैव श्मश्रूणि दृष्ट्वा देवी न्यमीलयत्" ॥ आदिपर्व १०५.५
माता सत्यवती के दोनों पुत्र विचित्रवीर्य और चित्राँगद से कोई संतान नहीं हुई और विचित्रवीर्य क्षयरोग से और चित्राँगद युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हो गये, तब माता सत्यवती को वंश-विकास की चिंता हुई । उन्होंने विचित्रवीर्य की विधवा पत्नियां अम्बिका और अम्बालिका से कहा कि वे महर्षि व्यास के साथ नियोग करके संतान प्राप्त करें । व्यास देखने में घोर भयंकर काले-कलुटे, बड़ी-बड़ी मूछ और दाढ़ी वाले थे । गर्भाधान-काल में अम्बिका उनकी शक्ल देख भयंकर डर गयी फलत: अपनी दोनों आँखें बन्द कर डरती और काँपती हुयी गर्भवती हुयी, परिणामत: उससे धृष्टराष्ट्र जन्मान्ध पैदा हुये । ऐसे ही सत्यवती के ही आदेश से व्यास जी ने विचित्रवीर्य की दूसरी विधवा पत्नी अम्बालिका से भी गर्भाधान किया । यहाँ भी अम्बालिका उन्हें देख डर गयी और पूरे शरीर से पीली पड़ गयी, गर्भाधान तो सफल हुया पर आने वाली संतान कमजोर, पीली (पाँडु) हुयी जिसका नाम भी पाँडु ही रखा गया ।--" सापि --, विवर्णा पाण्डु संकाशा समपद्यत भारत"- आदिप. १०५.१५ । अगली वार भी सत्यवती ने अम्बालिका को इस कार्य के लिये कहा पर अम्बालिका ने होशियारी से अपनी जगह अपनी दासी को सजी सुंदर अवस्था में अपने ही आभूषणों से सजाकर व्यास जी के पास भेज दिया - "तत: स्वैर्भूषणैर्दासीं भूषयित्वाप्सरोपमाम्। प्रेषयामास कृष्णाय तत: काशिपते: सुता "॥ १०५.२४ । दासी ने बहुत ही खुश और राजी-खुशी अवस्था में गर्भाधान प्राप्त किया फलत: विदुर जैसे धर्मात्मा विद्वान्पुत्र का जन्म हुया । ये सब वृतान्त गर्भाधान काल के प्रभाव का स्पष्ट व्याख्यान कर रहे हैं । कठोर तपस्वी व्रती व्यास जी जब दासी के साथ शयन करके उठे और बोले-" अयं च ते शुभे गर्भ: श्रेयानुदरमागत: । धर्मात्मा भविता लोके सर्वबुद्धिमतां वर:" । १०५.२७ अर्थात्तेरे उदर में अत्यन्त श्रेष्ठ बालक आया है । यह लोक में सब बुद्धिमान्लोगों के बीच एक श्रेष्ठ धर्मात्मा होगा । इस कारण विदुर कृष्णद्वैपायन व्यास के पुत्र हुये ।

एक वार एक परीक्षण के आधार पर पता चला कि युरोप आदि देशों में अगस्त-अक्तुबर मास में पैदा होने वाले अनेक विकृत व हीन वुद्धिवाले तथा स्वल्प जीवी बच्चे हुये कारण कि नवम्बर-जनवरी तक इन देशों में ठण्ड अधिक होने से लोगों में मदिरापान और तामसिक भोजन की अधिकता रहती है । इन दिनों के गर्भाधान के बच्चे अगस्त-अक्तुबर में ही जन्मेंगे । अत: यह आवश्यक है कि उत्तम संतान हेतु १३ दिन पूर्व से ही शुद्ध आहार- विहार और श्रेष्ठ विचार ग्रहण करने की मनोदशा बनाना आरम्भ कर देना चाहिये ।

दिन निश्चित होने पर प्रात: विधिवत्यज्ञ पूर्वक गर्भाधान सँस्कार करके ही दोनों अत्यन्त प्रसन्न, आस्तिक, उत्साहित व परस्पर प्यार की मुद्रा में ही गर्भाधान करें । इस लिये हम कह सकते हैं कि गर्भाधान सँस्कार बालक का नहीं अपितु बालक बनाने का नाम है । गर्भवती होकर भी स्त्री शुद्ध आहार-विहार व श्रेष्ठ विचार का ध्यान रखे । रामायण में भी बताया गया है कि सीता जब गर्भवती हुयी तब वैदिक सँस्करों से संस्कारित मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम ने भी अपने अनुज श्री लक्षमण से सीता जी को महषि वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ने को कहा । आश्रम के निकट पहुँच कर सीता जी के आदेश से लक्षण भैया लौटने लगे तब सीता जी बड़ी ही विनमता से बोलीं-" श्वश्रूजनं सर्वमनुक्रमेण विज्ञापय प्रापितमत्प्रणाम: । प्रजानिषेकं मयि वर्त्तमानं सूनोऽनुध्यायत: चेतसेति " रघुवंश्महाकाव्य-१४.६० कालीदास
अर्थात् हे भैया लक्षमण, तुम जाकर सभी सासों से मेरा प्रणाम कहकर निवेदन करना कि मेरे गर्भ में आपके पुत्र का ही तेज है इसलिये आपलोग हृदय से उसकी कुशल मनाते रहें । महषि वाल्मीकि के आश्रम में रहकर वच्चा जन्म देने का आशय केवल इतना था कि आने वाली संतान श्रेष्ठ, बलवान और विद्वान् हो ।

गर्भाधान के विधि भाग से ज्ञातव्य बातें-

१. गर्भाधान सँस्कार में पत्नी वेदी में वार्यी ओर बैठती है । इसी तरह नामकरण और निष्क्रमण सँस्कार में भी । कारण है कि ये तीनों सँस्कार में पत्नी व वच्चे को अधिक सुरक्षा की आवश्यकता है । पति कहना चाहता है कि मैं तुम्हें अपना हृदय रुपी रक्षा प्रदान कर अपने हृदय के पास रखना चाहता हूँ । पति के हृदय के पास पत्नी बैठे तो वह पति की वार्यी ओर ही हुआ । पत्नी को ऐसी अवस्था में न केवल शारीरिक रक्षा चाहिये अपितु मानसिक रक्षा भी चाहिये । पति ने जब अपना हृदय दे दिया है तो इससे अच्छा सुरक्षा स्थान पत्नी के लिये और कोई नहीं हो सकता । पत्नी जब पति के हृदय के पास है तब उसे कोई डरने की बात नहीं है । पति जी जान से, उत्साह और शक्ति से अपनी पत्नी को देये वचन को निभायेगा अर्थात्उसकी पूरी रक्षा करेगा । पत्नी भी पूर्णरुप से चिन्तारहित होकर गर्भस्थ संतान के समुचित विकास का ख्याल रखकर आगे बढ़ती रहेगी, पति की पीछे-पीछे चलती रहेगी । वार्यी ओर रहना पीछे रहने का प्रतिक है और दार्यी ओर रहना आगे- आगे बढ़ने का प्रतिक है ।
तभी अन्य सँस्कारों व यज्ञ-कार्यों में पत्नी दार्यी ओर बैठने लगती है । वह कहना चाहती है कि अब मैं समझदार, सँस्कारित और यज्ञीय कर्मों से सुपरिचित हो गयी हूँ अत: अब मैं सदैव आपका दायां हाथ बनकर आपकी शक्ति बनी रहूँगी । मनु महाराज ने ठीक ही कहा- "यज्ञ-कर्म विवाहेषु पत्नी तिष्ठेत् दक्षिणाम्"- मनुस्मृति ।

नामकरण सँस्कार और निष्क्रमण भी कुछ इन्हीं भावनों से जुड़े हुये हैं । नामकरण सँस्कार में पिता ही अपने अधिकार में लेकर उसे नाम प्रदान करता है । माँ वच्चे को पीच्छे से जाती हुयी पिता के गोद में ही पहले वच्चे को सौंपती है । पिता पूरी सुरक्षा व प्यार देता हुआ पूर्ण अधिकार से वच्चे को नाम देता है; सबके वीच घोषणा करता है कि हमारे वच्चे का अब "अमुक" नाम रहेगा । जैसे राहुल, रश्मी, आदि । इसी भाव से पत्नी और वच्चे को पूरी सुरक्षा प्रदान करने का वचन देता है । निष्क्रमण सँस्कार में भी यही भाव है । निष्क्रमण सँस्कार में वच्चे को किसी धार्मिक स्थान या कोई अन्य मनोरम वाग-वगीचा जैसी खुली जगह ले जाना होता है । ऐसी जगह भी छोटा वच्चा होने के नाते उसे सम्भालने में पति का सहारा अधिक चाहिये । अत: यहाँ भी पत्नी पति की वार्यी ओर ही होती है ।

२. गोत्र-परिवर्तन-विचार- वस्तुत: विवाह सँस्कार में विभिन्न वचनों से बन्ध तो जाते हैं पर गोत्र परिवर्त्तन

नहीं होता । कन्या दान (प्रतिग्रहण विधि) में दोनों अपना गोत्र का परिचय दे देते है । यहाँ पत्नी कहती है कि मैं पति के तेज को ही अपने गर्भ में संतान के रुप में ग्रहण कर रही हूँ इस लिये मैं पति के गोत्र को अब ग्रहण करती हूँ । गर्भाधान सँस्कार ठीक विवाह के बाद ही बल्कि चौथे दिवस ही होता है, इसे कहीं-कहीं चौठारी भी कहा जाता है, और यही साथ-साथ रहने का प्रारम्भ भी है, अत: यहीं पर गोत्र परिवर्त्तन उचित भी प्रतीत होता है । फलत: इस सँस्कार में गोत्र परिवर्त्तन की विधि प्राप्त है । फिर व्यावहारिक तौर पर तो सही पति-पत्नी गर्भाधान प्रक्रिया द्वारा एक साथ होने पर ही है । विवाह में वचनवद्ध होना और यहाँ व्यावहारिक रुप से एके हो जाना । यही पति-पत्नी का एक दूजे के लिये पूर्ण समर्पण है । वैसे भी हर पत्नी को विवाह के बाद पति के कुल में ही आना होता है । यही कारण है कि विवाहोपरान्त हर पत्नी पति का गोत्रोचित उपनाम (सर्नेम) लिखना स्वीकार करती है । ये सारी व्यावहारिक प्रक्रियायें एक पत्नी को पति का गोत्र पाने का अधिकार दे रही हैं । इसी कारण आने वाली संतान का गोत्र भी पिता का गोत्र ही होगा । वैदिक परम्परा भी यही है ।

३. गर्भाधान सँस्कार में वीच भाग की विधियों में ५-५ मंत्रों की युगल छाया में कुछ इस प्रकार महत्त्वपूर्ण प्रार्थनायें की गयीं हैं जो ये भी समझना आवश्यक है--

१. अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य तथा इन सब से एक साथ प्रार्थनायें की गयीं हैं कि हमारे जीवन में धर्मानुकूल लक्ष्मी (धन-दौलत) हो न कि अधर्म से अर्जित पापी लक्ष्मी ।

२. पत्नी पतिघ्नी तनू: न स्यात्अर्थात्पत्नी विधवा न हो ।

३. स्त्री अपुत्र्या: तनू: न स्यात्स्त्री निसंतान न हो ।

४. अपसव्या तनू: न स्यात्पति के प्रतिकूल चलने वाली न हो ।

५. पत्नी के मन व शरीर में कोई दोष न रहे ताकि वह व्यवहार से भी शुद्ध हो सके ।

६. स्त्री गर्भस्थ संतान को नौ मास तक भलिभाँति सन्भाल सके । भलिभाँति का यहाँ अर्थ यही है कि वह भौतिक व मानसिक तौर पर पूर्णत: स्वस्थ रहे और स्वस्थ संतान को जन्म दे ।

७. पत्नी द्वारा पति का दायां स्कन्ध (कन्धा) छूना परस्पर प्रगाढ़ प्रेम व समर्पण दिखलाना है ।

८. सुदृढ़ गर्भ, शतायुष्य और इससे भी अधिक आयु, स्वस्थ तथा तेजस्वी संतान की प्रार्थना की गयी है ।

९.जल-पात्र में वीच-वीच में यजमान द्वारा आहुत घी की बून्दें छोड़ने का विधान है । इस जल को मलकर स्त्री नहावे और शुद्ध वस्त्र धारण कर फिर वेदी में आवे और पति-पत्नी दोनों कुण्ड की प्रदक्षिणा करते हुये सूर्य का ख्याल करें । यह सब यज्ञ की पूर्णता का परिचय है । सूर्य सदृश तेजस्वी संतान हो; ऐसी भावना कर यह कार्य करना और परमेश्वर से सफलतार्थ प्रार्थना करना समुचित ही है ।
यहीं पति का गोत्र नाम लेकर पत्नी पति का आदर करके सब उपस्थित श्वसुर आदि बड़े जनों का भी अभिवादन करे ताकि वह जीवन में पितृ यज्ञ का महत्त्व समझ सके और तदनुरुप जीवन में व्यवहार भी करती रहे ।

९. सर्वौषधियुक्त आहर, शुद्धाहार-विहार का महत्त्व जानना.

१०. समयानुसार केसर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, छोटी इलायची आदि युक्त थोड़ा गर्म थोड़ा शीतल दूध का सेवन गर्भवती स्त्री करती रहे ताकि स्वस्थ, सुन्दर, सुडौल व निरोग संतान प्राप्त हो ।

इस प्रकार गर्भाधान सँस्कार-विचार सम्पन्न हुआ । अब आगे पुँसवन सँस्कार की बात करेंगे ।